प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

एकल पीठ : माननीय श्री दिलीप रावसाहेब देशमुख, न्यायाधीश

द्वितीय अपील क्रमांक 30/2007

अपीलार्थी प्रतिवादी - मुनु, पिता अंजोर सिंह, जाति - अघरिया, आयु लगभग 36 वर्ष, व्यवसाय - कृषक, निवासी ग्राम पिरदा, पटवारी हल्का क्रमांक 36, तहसील एवं जिला महासमुंद (छत्तीसगढ़)।

बनाम

प्रत्यर्थीगण वादी - 1. जगदीश, पिता स्वर्गीय पेटपाल, आयु लगभग 52 वर्ष।

2. बिरेन्द्र कुमार, स्वर्गीय पेटपाल के पुत्र, आयु लगभग 40 वर्ष।

3. दिलीप कुँवर, पति स्वर्गीय पेटपाल।

उपरोक्त सभी जाति - अघरिया, व्यवसाय - कृषक, निवासी ग्राम पिरदा, पटवारी हल्का क्रमांक 36, तहसील एवं जिला महासमुंद (छत्तीसगढ़)।

4. छत्तीसगढ़ राज्य, कलेक्टर महासमुंद, जिला महासमुंद (छत्तीसगढ़) ।

द्वितीय अपील, धारा 100 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत।

उपस्थितिः-

श्री सुनील साहू, अधिवक्ता अपीलार्थी की ओर से ।

श्री अखिल अग्रवाल, पैनल अधिवक्ता प्रत्यर्थी क्रमांक 4 / राज्य की ओर से ।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

मौखिक निर्णय

(दिनांक 17.11.2007)

प्रवेश स्तर पर सुना गया।

(2) अपीलार्थी अपनी सिविल अपील क्रमांक 14-क/2004 के निरस्तीकरण से व्यथित है, जिसे द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश, महासमुंद (छत्तीसगढ़) द्वारा दिनांक 30.11.2006 के निर्णय एवं डिक्री के माध्यम से यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि वह परिसीमा से वर्जित थी।

(3) संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि सिविल वाद क्रमांक 111-ए/1999 में व्यवहार न्यायाधीश, श्रेणी-1, महासमुंद (छत्तीसगढ़) ने दिनांक 21.09.2000 के निर्णय एवं डिक्री द्वारा वादी के पक्ष में वाद डिक्री किया। उक्त निर्णय की प्रमाणित प्रति हेतु आवेदन दिनांक 23.09.2000 को प्रस्तुत किया गया तथा उसकी प्रति दिनांक 09.02.2001 को प्राप्त हुई।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

प्रत्यर्थी क्रमांक 6 मनु द्वारा ही दिनांक 27.03.2004 को अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत की गई। शेष प्रत्यर्थी क्रमांक 1 से 5 एवं 7 को प्रत्यर्थी के रूप में भी पक्षकार नहीं बनाया गया। परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत एक आवेदन भी प्रस्तुत किया गया, जिसमें यह कहा गया कि अपीलार्थी ने अपील प्रस्तुत करने का कार्य अपने बड़े भाई मनबोध को सौंपा था तथा आवश्यक समस्त दस्तावेज उसे दे दिए थे। यह भी कहा गया कि मनबोध एक "साधु" था और लगभग 3 वर्षों से उसका कोई पता-ठिकाना ज्ञात नहीं था।

लगभग 3 वर्ष व्यतीत होने के पश्चात अपीलार्थी महासमुंद आया और उसने अधिवक्ता से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया, तब उसे बताया गया कि कोई अपील प्रस्तुत नहीं की गई है। आगे, अपील के कंडिका 9 में यह भी उल्लेख किया गया कि दिनांक 08.03.2004 को अपीलार्थी के पिता ने उसे सूचित किया कि कोई अपील प्रस्तुत नहीं

की गई है, जिसके पश्चात दिनांक 10.03.2004 को अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री की प्रमाणित प्रति प्राप्त की गई।

अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त करते हुए अपील को परिसीमा के आधार पर निरस्त कर दिया कि अपीलार्थी अपील प्रस्तुत करने में हुई देरी के लिए पर्याप्त कारण प्रदर्शित करने में असफल रहा।

(4) अपीलार्थी के अधिवक्ता ने *एन. बालकृष्णन बनाम एम. कृष्णमूर्ति*, 1988 (7) सुप्रीम कोर्ट केसेज़ 123, के निर्णय का अवलंब लेते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय को परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन पर विचार करते समय पर्याप्त उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए था, ताकि वास्तविक एवं पर्याप्त न्याय को आगे बढ़ाया जा सके, तथा आवेदन को यंत्रवत ढंग से निरस्त नहीं किया जाना चाहिए था।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(5) अपीलार्थी के अधिवक्ता के निवेदन पर विचार करने के उपरांत मैंने अभिलेख का अवलोकन किया। *एन. बालकृष्णन (उपर्युक्त)* के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया :

> "न्यायालय का प्रमुख कार्य पक्षकारों के मध्य विवाद का न्यायनिर्णयन करना तथा वास्तविक एवं पर्याप्त न्याय को आगे बढ़ाना है। विभिन्न परिस्थितियों में न्यायालय के समक्ष आने के लिए जो समय-सीमा निर्धारित की गई है, उसका उद्देश्य यह नहीं है कि उस अवधि की समाप्ति के पश्चात कोई दुर्बल वाद एक सशक्त वाद में परिवर्तित हो जाए। परिसीमा संबंधी नियम पक्षकारों के अधिकारों का विनाश करने के लिए नहीं बनाए गए हैं। उनका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि पक्षकार विलंबकारी उपायों का सहारा न लें, बल्कि शीघ्रता से अपने उपचार की मांग करें।

विधिक उपचार प्रदान करने का उद्देश्य विधिक क्षति के कारण हुई हानि की भरपाई करना है। परिसीमा का विधि-विधान ऐसे विधिक उपचार के लिए एक निश्चित जीवन-

काल निर्धारित करता है, जिसके भीतर विधिक क्षति का प्रतिकार प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार, परिसीमा का विधि-विधान लोकनीति पर आधारित है। यह उस विधिक सिद्धांत में निहित है— *interest reipublicae ut sit finis litium* — अर्थात् "राज्य के हित में मुकदमेंबाजी का अंत हो।" परिसीमा संबंधी नियम पक्षकारों के अधिकारों का नाश करने के लिए नहीं बनाए गए हैं। उनका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि पक्षकार विलंबकारी युक्तियों का सहारा न लें, बल्कि शीघ्रता से अपने विधिक उपचार की मांग करें। मूल विचार यह है कि प्रत्येक विधिक उपचार को विधायिका द्वारा निर्धारित अवधि तक ही जीवित रखा जाए।"

विलंब को क्षमा न्यायालय के विवेक का विषय है। परिसीमा अधिनियम की धारा 5 यह नहीं कहती कि ऐसा विवेक केवल तभी प्रयोग किया जा सकता है जब विलंब किसी निश्चित सीमा के भीतर हो। विलंब की अवधि का कोई महत्व नहीं है; केवल स्पष्टीकरण की स्वीकार्यता ही एकमात्र मापदंड है। कभी-कभी अत्यल्प अवधि का विलंब भी स्वीकार्य स्पष्टीकरण के अभाव में अक्षम्य हो सकता है, जबकि अन्य मामलों में अत्यधिक लंबी अवधि का विलंब भी क्षम्य हो सकता है, यदि उसका स्पष्टीकरण संतोषजनक हो।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

प्रत्येक विलंब के मामले में संबंधित वादी की ओर से कुछ न कुछ त्रुटि या चूक हो सकती है। केवल इसी आधार पर उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर उसके लिए न्यायालय के द्वार बंद नहीं किए जा सकते। यदि स्पष्टीकरण दुर्भावना से प्रेरित प्रतीत नहीं होता अथवा विलंबकारी रणनीति के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो न्यायालय को वादी के प्रति अत्यधिक उदारता एवं सहानुभूति प्रदर्शित करनी चाहिए।

परंतु जहाँ यह मानने का उचित आधार हो कि विलंब जानबूझकर समय प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया है, वहाँ न्यायालय को ऐसे स्पष्टीकरण को स्वीकार करने के विरुद्ध झुकाव रखना चाहिए। न्यायालय यह भली-भाँति जानता है कि विलंब को क्षमा न करने का परिणाम यह होगा कि वादी अपने पक्ष को प्रस्तुत करने के अवसर से वंचित

हो जाएगा। यह कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि न्यायालय के समक्ष विलंब से आने का प्रत्येक मामला जानबूझकर किया गया होता है।

परिसीमा अधिनियम की धारा 5 में प्रयुक्त शब्द "पर्याप्त हेतुक" का उदारतापूर्वक अर्थ ग्रहण किया जाना चाहिए, जिससे वास्तविक एवं पर्याप्त न्याय को आगे बढ़ाया जा सके।

(6) ***एन. बालकृष्णन (पूर्वोक्त)*** के निर्णय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों की कसौटी पर वर्तमान मामले का परीक्षण करने पर, अपीलार्थी का यह कथन कि विचारण न्यायालय के निर्णय की प्रमाणित प्रति प्रथम बार दिनांक 10.03.2004 को प्राप्त की गई, विचारण न्यायालय के निर्णय की प्रमाणित प्रति के अवलोकन से असत्य सिद्ध होता है। उक्त प्रति से यह स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 21.09.2000 को निर्णय पारित किए जाने के तुरंत पश्चात, दिनांक 29.09.2000 को उसकी प्रति हेतु आवेदन प्रस्तुत किया गया था तथा वह प्रति दिनांक 09.02.2001 को प्रदान कर दी गई थी।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

मनबोध अथवा उस अधिवक्ता का, जिसने अपीलार्थी को यह सूचना दी थी कि कोई अपील प्रस्तुत नहीं की गई है, कोई शपथ-पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया। अपीलार्थी द्वारा यह स्पष्टीकरण देना कि उसने अपील प्रस्तुत करने हेतु दस्तावेज मनबोध नामक एक साधु को सौंप दिए थे, जिसका कोई निश्चित पता-ठिकाना नहीं था, विश्वास उत्पन्न नहीं करता तथा न ही वह स्वाभाविक अथवा सद्भावनापूर्ण प्रतीत होता है।

यह भी समझ से परे है कि प्रत्यर्थी क्रमांक 1 से 5 एवं 7 को इस अपील में पक्षकार क्यों नहीं बनाया गया। व्यवहार वाद क्रमांक 111-ए/1999 में वादीगण—जगदीश कुमार एवं अन्य दो—ने वंशानुगत वादग्रस्त संपत्ति के विभाजन एवं कब्जा प्राप्ति हेतु वाद प्रस्तुत किया था, इस कथन के साथ कि अनुसूची-बी में वर्णित संपत्ति प्रत्यर्थी क्रमांक 1 अंजोर सिंह, जो वर्तमान अपीलार्थी के पिता हैं, के नाम बेनामी रूप से क्रय की गई थी। यह भी अभिवचन किया गया था कि अंजोर सिंह ने एक अपंजीकृत दस्तावेज के

माध्यम से उक्त संपत्ति को प्रतिवादी क्रमांक 4 एवं 5 तथा प्रत्यर्थी क्रमांक 6 मनु, अर्थात् वर्तमान अपीलार्थी, के मध्य विभाजित कर दिया था।

विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष दिया कि अनुसूची-ए, बी, सी एवं डी में वर्णित संपत्तियाँ वादीगण एवं अंजोर सिंह की संयुक्त संपत्ति थीं तथा वादीगण वादग्रस्त संपत्ति में 4/5वें हिस्से के विभाजन एवं कब्जे के अधिकारी हैं।

ऐसी परिस्थिति में, अपीलार्थी द्वारा प्रतिवादी क्रमांक 1 अंजोर सिंह तथा अन्य प्रतिवादी क्रमांक 2 से 5 को अपील में पक्षकार न बनाए जाने से यह निष्कर्ष निकलता है कि ये प्रतिवादी, विशेषकर अपीलार्थी के पिता अंजोर सिंह, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री से व्यथित नहीं थे। इन प्रत्यर्थीगण को पक्षकार न बनाया जाना अपील के लिए घातक भी था, क्योंकि वे आवश्यक पक्षकार थे।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

अतः यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी क्रमांक 6 / अपीलार्थी द्वारा तीन वर्ष से अधिक विलंब के पश्चात अपील प्रस्तुत करना मात्र विलंबकारी रणनीति थी तथा उससे दुर्भावना से प्रेरित प्रतीत होती है।

(7) ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री की प्रमाणित प्रति दिनांक 09.02.2001 को प्राप्त करने के पश्चात तीन वर्ष से अधिक समय तक निष्क्रियता की स्थिति में रहा। दिनांक 10.03.2004 को प्रथम बार प्रमाणित प्रति प्राप्त करने की कहानी असत्य है, क्योंकि ऐसी कोई प्रमाणित प्रति अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है। अतः यह मानने के लिए पर्याप्त आधार हैं कि विलंब जानबूझकर किया गया था तथा वह सद्भावनापूर्ण नहीं था।

(8) इस प्रकार, अपीलार्थी अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय के समक्ष लगभग साढ़े तीन वर्ष के अत्यधिक विलंब से अपील प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त कारण प्रदर्शित करने में असफल रहा। अतः अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा उदार दृष्टिकोण न अपनाते हुए, अपील प्रस्तुत करने में विलंब के क्षमा हेतु की गई प्रार्थना को अस्वीकार करना तथा अपील को परिसीमा से बाधित मानकर निरस्त करना न्यायोचित था।

फलस्वरूप, इस द्वितीय अपील में विचारण हेतु कोई सारवान विधिक प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। अतः यह द्वितीय अपील प्रवेश स्तर पर ही खारिज की जाती है।

सही/-

(सुनील कुमार सिन्हा)

न्यायाधीश

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur